REVIEW OF RESEARCH
IMPACT FACTOR : 5.7631(UIF) UGC APPROVED JOURNAL NO. 48514 ISSN: 2249-894X
VOLUME - 8 | ISSUE - 4 | JANUARY - 2019

'हिंदी' तथा 'मराठी' उपन्यासों में आदिवासियों की समस्याएँ

सहा. अधि. तोंडाकुर एल. पी
हिंदी विभाग , सरस्वती महाविद्यालय, केज , जि. बीड.

भारत वर्ष बहुभाषी देश है । मराठी, गुजराती, कन्नड, मलयालम, तमिल, तेलुगु, उडिया, बांग्ला, असमी, कश्मीरी, पंजाबी, सिंधी, हिंदी तथा उर्दू भारत वर्ष की प्रधान आधुनिक भाषाएँ हैं । ऐतिहासिक रूप में ये सभी भाषाएँ प्रधानतः संस्कृत, प्राकृत, पाली तथा अपभ्रंष भाषाओं से जुड़ी हुई हैं । भारत स्वतंत्र होने के पश्चात् भारत की आधुनिक भाषाओं का सम्मान बढ़ा है और उनके विकास की ओर ध्यान दिया गया है । आज प्रायः सभी आधुनिक भाषाएँ अपने-अपने प्रदेशों में विकसित हो रही हैं । उन्हें शिक्षा का माध्यम बनाया गया है । शिक्षा तो अपनी-अपनी भाषाओं में प्राप्त कर रहे हैं किंतु आदिवासियों की कोई एक भाषा नहीं है उनकी अपनी भाषा में शिक्षा नहीं मिल पा रही है । यहाँ एक महत्त्वपूर्ण काम तुलनात्मक साहित्य का दिखाई देता है । एक भाषा के उपन्यास को दूसरी भाषा के उपन्यास से तुलना करने से उनका संबंध गहरा हो रहा है । एक दूसरे की स्थिति को पहचान पा रहे हैं । इसी संदर्भ में दृष्टव्य है— 'हिंदी तथा मराठी आदिवासी उपन्यास' ।

पिछले कुछ दशकों से हिंदी और मराठी में आदिवासी उपन्यास लिखें जा रहे हैं पर बहुत ही कम । इन उपन्यासों की संख्या धीरे-धीरे बढ़ती गयी । आदिवासी समाज का जीवन भीतर से जितना खुली है, बाहरी लोगों को वह बंद समाज ही लगता है । उनके सामाजिक, राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन को अनुभव किये बिना उनका चित्रण करना कठिन है । हिंदी और मराठी में आदिवासी-जीवन के संदर्भ में कुछ गिने-चुने महत्त्वपूर्ण उपन्यास लिखें गए । जैसे— अल्मा कबूतरी, काला पादरी, जो इतिहास में नहीं है, धूणी तपे तीर, ग्लोबल गाँव के देवता, काला पहाड़, जंगल जहाँ शुरू होता है, गाथा भोगनपुरी तथा जहाँ बाँस फूलते हैं (हिंदी) । एकलव्य, एका नक्षलवाद्याचा जन्म, एनकाऊन्टर, जांभूळपाडा, मन्वंतर, वावटळ, कोळवाडा, भूक, हाकुमी, ब्र, पारधी, टाहो तथा तंट्या (मराठी) ।

आदिवासियों के जीवन का कोई सार्वभौमिक स्वरूप बताया नहीं जा सकता । इन आदिवासियों में कुछ प्रमुख समानताओं के बावजूद प्रत्येक आदिवासी के अपने-अपने नियम हैं । अपनी-अपनी संस्कृति है, अर्थव्यवस्था तथा धार्मिक मान्यताएँ हैं । आदिवासी अपने पूर्वजों की परंपरा को अपनाते हुए चले आ रहे हैं । प्रमुख भारतीय जनजातियाँ इस प्रकार मिलती हैं— 1. संथाल- इनका मुख्य निवास बिहार का संथाल परगना है । ये पश्चिम बंगाल और अन्य क्षेत्रों में भी पाई जाती हैं । 2. भील- भारत की प्रमुख जनजातियों में से एक है । इनका प्रमुख केंद्र मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र और राजस्थान है । 3. खस- उत्तर प्रदेश की महत्त्वपूर्ण जनजाति है । ये देहरादून जिले के जौनसर बाबर क्षेत्र में निवास करते हैं । 4. मन्नेरवारलू- महाराष्ट्र के नांदेड तथा अन्य जिलों में पायी जाती है । 5. थारू- उत्तर प्रदेश की प्रमुख जनजाति है । यह उत्तर प्रदेश के तराई क्षेत्र में फैले हुए हैं । 6. नागा- नागा क्षेत्र में रहते हैं । 7. हो- जनजाति बिहारी व ओड़िसा में रहती है । आदिवासियों की अनेक जातियां कबीलाई जीवन शैली में अरणमुखी संस्कृति और उत्सवधर्मिता के कारण आर्थिक अभाव में कंगाल बनी है । यह अज्ञानी, अनपढ़ और अंधश्रद्धालु होने के कारण इनका समाज में चारों ओर से शोषण होता है । इस संदर्भ में विनायक तुमराम कहते हैं— "वनवासियों का क्षत जीवन, जिस संस्कृति के गोद में छुपा रहा, उसी संस्कृति के प्राचीन तथा अनुभव का शब्द रूप हैं ।"[1]

हिंदी और मराठी उपन्यासों में आदिवासियों की अनेक समस्याएँ हैं । जैसे— सामाजिक समस्या—भूक, दुःख, दारिद्र की समस्या, अंधविश्वास, प्राकृतिक आपदा, जल-जंगल-ज़मीन और जानवर की समस्या, व्यसनाधिनता, बेरोजगारी, निर्धनता, स्त्री-अत्याचार,

प्रशासकीय समस्या— पुलिस, रेंजर, पटवारी, अधिकारी, गार्ड, तथा सेठ, साहूकारों, ठेकेदार, जमीनदार, भूमंडलीकरण की समस्या, अन्य गैर-आदिवासियों द्वारा शोषण आदि समस्याओं का चित्रण किया गया है ।

सभी हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में सामाजिक समस्या में भूक का प्रादुर्भाव दिखाई देता है । भूक का मूल कारण आदिवासियों की दुःख और दरिद्रता ही है । हिंदी के अल्मा कबूतरी उपन्यास में कदमबाई, जंगलिया, राणा, अल्मा का दुःख परिलक्षित होता है । समाज उन्हें किस तरह अपमानित करता है और राणा को बालपण से ही उच्च

समाज का शिकार बनना पड़ता है। राणा को नाजायज औलाद के रूप में समाज ने जो वेदनाएँ पहुचायी हैं और जब वह स्कूल में जाता है तो मास्टर उसे नल का पानी तक पीने नहीं देता। कहता है—"तू नल को नहीं छुएगा। नल के आसपास भी देख लिया तो... याद रखना, यहाँ सिपाही आते हैं, पकड़वा दूँगा।"[2]

इसी तरह की समस्या मराठी के पारधी उपन्यास में दिखाई देती है। चित्र्या की बीवी खारी जब बर्तन माँजने तथा पीने का पानी भरने के लिए सामाजिक नल पर जाती है तब एक उच्चवर्ग की स्त्री उसके बर्तन नाली में फेंककर उसे लाथों से भूनती है और कहने लगती कि— "ऐ भीकारीन, चोरी के बर्तन, यहाँ माँजने लायी है क्या ? तू नल को नहीं छू सकती।"[3]

भूकमरी का चित्रण हिंदी के 'काली पादरी' उपन्यास में आया है। बिरई लकड़ा की मृत्यु के पश्चात हाहाकार मच जाता है। राज्य में पैलेस विरोधी सरकार है तो आपको पूछेगी नहीं, पर पैलेस का कोई आदमी आपको अस्पताल पहुँचाएगा। और अख़बार वाले, टी.वी. वाले, रेडियो वाले राजनीतिक फायदा उठाने पहुँच जाते हैं। अपनी राजनीतिक रोटीयाँ सेंकने के लिए धर्म की नक़ाब ओढ़कर मानवता का पाठ पढ़ाया जाता है। जैसे— "सुनो, बिरई लकड़ा का परिवार अगर कन्वर्ट होता तो इस तरह भूख से नहीं मरता।"[4]

मराठी के बहुतांश उपन्यासों में भूक की समस्या दृष्टिगोचर हुई है। प्रमुख रूप से 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' में भूक समस्या का विस्तृत विवेचन हुआ है। इस उपन्यास में सरकार के दमनकारी नीतियों से जंगल पर कब्जा करना, आदिवासियों को जंगल से बेदखल करना तथा जंगल कानून के तहत शिकारी पर पाबंदी लाने के वजह से ही भूक इनकी मुख्य समस्या बनी हुई है। भूक का चित्रण 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' उपन्यास में इस तरह से किया— "सकाळी एक द्रोण आंबील तो प्यायला होता. त्यावर दिवस काढावा लागणार होता. घरात काहीच नव्हते थोडीशी आंबील होती ती मुलांसाठी ठेवली होती. (वो सुबह एक द्रोण (पत्ते की कटोरी) आंबील (गेंहू और ज्वार के आटे में ईमली तथा दही मिलाकर उसे पकाया जाता है उसके बाद जो पेय तैयार होता है उसे अंबिल कहते हैं।) पीया था। उसी पर उसे दिन निकालना था। घर में कुछ भी नहीं था थोडीसी आंबील थी तो वह बच्चों के लिए रखी थी।)"[5]

भूक का चित्रण 'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास में दिखाई देता है— "लोग सरेआम भूखों मर रहे हैं। पर हमारी सरकार के लिए यह ख़बर भी टाप-सिक्रेट है।"[6] इसलिए 'हाकुमी' उपन्यास के उपन्यासकार ने भूक की व्याख्या एक लाईन में करते हुए कहा है कि— "भूक हे इथलं सार्वत्रिक वास्तव आहे. (भूक यहाँ का सार्वजनिक वास्तव है।)"[7]

अंधश्रद्धा की समस्या आदिवासी समाज में कूट-कूटकर भरी हुई है। आदिवासी समाज अज्ञानतावश अंधश्रद्धा अपना लेते हैं। हिंदी के 'ग्लोबल गाँव के देवता' तथा मराठी के 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' तथा 'हाकुमी' उपन्यास में खेत में फसल बहुत अच्छी आने के लिए मनुष्यों की बलि दी जाती है। जैसे— "दरअसल अब भी कुछ लोगों के मन में यह बात बैठी हुई है कि धान को आदमी के ख़ून में सानकर बिचड़ा डालने से फ़सल बहुत अच्छी होती है। इसलिए इस सीजन में मुड़ीकटवा लोग घूमते हैं।"[8] "शेतात धानाचे भरघोस पीक येण्यासाठी देवीला लहान मुलाचा बळी देण्याची प्रथा त्यांच्या जमातीत आजही होती काहीवेळा पैशासाठी बापच आपली मुले मोठ्या शेतक-यांना देत असत. धानकापनीच्या वेळी मुले पळविणा-या टोळ्या फिरत असत (खेत में भरघोस फसल आने के लिए देवी को छोटे बच्चों की बलि देने की प्रथा आज भी स्थित है। कई बार पैसों के लिए अपने बच्चों को बड़े किसानों को बेच देते हैं। धान कटाई के सीजन में बच्चें भगानेवाले टोळी पनपने लगती है।)"[9] "जंगलालगतच्या जबरनच्या शेतात नेऊन त्या पोराचा पेरमानं बळी घेतला होता त्याच रक्त पिकाच्या आशेनं त्या शेतात शिंपडलं होतं. त्या रक्तात भिजवून घेतलेले लोखंडाचे खिळे गावो गावच्या कास्तकरांना विकले होते. असले खिळे शेतात पुरले तर पिक वाढतात असा लोकांचा समझ होता. (पेरमा ने जंगल में जबरन के खेते में लड़के को ले जाकर उसकी बलि दी थी। फसल अच्छी आने के लिए उसका खून खेत में सनाया (शिंपडने) था। उस खून में भिगोये हुए लोहे के कीले गाँव के कातकरों के बेचा था। वह कीले खेत में गाड़ने से फसल अच्छी आती है ऐसी लोगों की धारणा थी।)"[10] "हजूर, बनस्पती देवी हैं, भटका रही हैं। डाकुओं की देवी हैं। कभी कोई रूप धर लेती हैं, कभी कोई। और ऊ दिन भी ऊ लड़की लड़की थोड़े ही थी, उन्हीं की माया थी। आँखों पर परदा न डाल देती हैं मैया !"[11] इस तरह से आदिवासी लोग अंधश्रद्धा में फंसे हुए हैं। लगभग सभी उपन्यासों उनकी अंधश्रद्धा का जिक्र किया गया है।

व्यसनाधीनता आदिवासियों के लिए एक अभिशाप है। भारत में जितने भी आदिवासी समुदाय है उनमें व्यसनाधीनता की समस्या व्याप्त है। इस व्यसनाधीनता को मिटाने के लिए 'धूणी तपे तीर' उपन्यास में गोविंद गुरू पाँच-सात किशोरों को लेकर समझाता है। पढ़ने लिखने के अधिक जोर देता है। किंतु वहाँ के लोग कहते है कि, राज के आदमी हम पर अनेक प्रकार के अत्याचार करते हैं और जागीरदार हमसे बिना मेहनताना बेगार कराते हैं। इसकी चिंता को जताते हुए वे कहते हैं— "हमारे आदमी दारू पीकर शरीर व माथा खराब करते हैं। अपनी औरतों व बच्चों को आये दिन तंग करते रहते हैं। यह बुरी आदत है। इनका विरोध हमें करना चाहिए ना ?"[12] इसी तरह व्यसनाधीनता की समस्या मराठी के 'ब्र' उपन्यास में दिखाई देती है। किंतु इस उपन्यास में आदिवासी स्त्री सैनाबाई व्यवसनाधीनता के कारण दूबारा शादी करने से इन्कार करते हुए कहती है— "आता दुसरेपणीचा म्हणजे डोकरा नाहीतर दारूड्याच मिळणार त्याला

दारूला पैसे द्या आणि वर त्याचा मार खा कशाला पाहिजे ? (अब दूसरी शादी करने का मतलब है एक तो बुढ्ढा नहीं तो शराबी ही मिलेगा। उसे शराब के लिए पैसे दो और ऊपर से उसका मार खाओ। काहे चाहिए ?)"[13]

हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में सबसे बड़ी कोई समस्या हैं तो वह है स्त्री–अत्याचार। एक ओर तो स्त्री को देवी, माता, धरती, जननी के रूप में दिखाया गया है और दूसरी ओर इन्हीं देवी, माता पर अन्याय, अत्याचार, बलात्कार के किस्से देखने, सुनने को मिलते हैं। इसी अन्याय, अत्याचार तथा बलात्कार का चित्रण करते हुए रजनी तिलक अपनी कविता 'औरत-औरत में अंतर है' में कहती है—

"शाम को एक सोती है बिस्तर पे
तो दूसरी काँटो पर।
छेड़ी जाती हैं दोनों ही बेशक
एक कार में, सिनेमा हॉल व सड़को पर
दूसरी खेतों, मुहल्लों में, खदानों में "[14]

'ग्लोबल गाँव के देवता' उपन्यास में उच्च वर्ण के लोग आदिवासी लड़कियों से अपनी वासना की भूक मिटाते हैं। एक ओर उन लड़कियों की शादी होने नहीं देते। जब मुश्किल से शादी हो भी गयी तो दो-चार साल में ही तलाक हो जाता है या फिर विधवा बन जाती है। जैसे— "घाँसी टोले में परित्यक्ता और विधवा बेटियों की बाढ़-सी आ गयी है। कसाइयों के हाथ में पड़ी गाय-सी ये बेटियाँ बार-बार पेट गिराने से असमय ही बूढ़ा जाती हैं। ये नवयुवती-वृद्धाएँ दुख-विषाद से स्याह चेहरा-देह ले जहाँ गुज़रती हैं, एक उदारी-सी छा जाती है।"[15] इसी तरह का अन्याय, अत्याचार मराठी के 'एका नक्षलवाद्याचा जन्म' उपन्यास में मिलता है। माडिया गोंड आदिवासी के सामने जान बूझकर कोई समस्या खड़ा कर दी जाती थी और उस समस्या को निपटाने के लिए आदिवासी स्त्रियों तथा बेटियों को पुलिस तथा रेंजर का बिस्तर गरम करते हुए रात गुजारनी पड़ती थी। जैसे— ".... नकरी रात्री कोठे गेली असावे ? जमादाराखाली झोपण्यासाठी तर नाही ? (नकरी रात में कहाँ गई होगी ? जमादार के नीचे सोने के लिए तो नहीं ?)"[16]

'जहाँ बाँस फूलते हैं' उपन्यास में खूमा कामी के बदन को देखने के बाद अपने आप को रोख नहीं पाता और उसके बदम पर कीचड़ पोतने लगता है। कामी उससे बचने की कोशिश करती है, चिल्लाती है लेकिन— "खूमा ने कीचड़ लगाते-लगाते उसे निर्वस्त्र कर दिया। मादरजात नंगी कामी फिसलकर उसके हाथ से बाहर आई और चिल्लाती भागने लगी। पर कितना भागती ? बाँसों की झुरमुट तक आते-आते खूमा ने उसे दबोच लिया।"[17] इसी तरह मराठी के 'कोळवाडा' उपन्यास में शिरप्या फशी को फंसाता है और अपना सिर ऊँचा करके गाँव में घूमते रहता है। लेकिन फशी जिंदगी से उठ जाती है। और इस समाज की एक धारणा है कि शादी से पहले किसी लड़के साथ जुगलबंदी कर ले तो वह समाज चरित्रहीन ठहराता है। जैसे— "फशीची मात्र कायम ची इज्जत गेली. तिला कोणी करीना (लग्न होईना) कारण काय तर म्हणं तीनं लफडं केलं व्हतं. (फशी की हमेशा के लिए इज्जत चली गयी थी। उससे शादी करने के लिए कोई तैयार नहीं है। क्योंकि वह लफड़ा की थी।)"[18]

हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में एक बड़ी समस्या यह भी रही है कि सेठ, साहूकार, जमींदारों ने आदिवासियों की लूट, जमीन से बेदखली, उनके स्त्रियों पर अत्याचार, बलात्कार तथा रखैल के रूप में उनको रखा है। इसी तरह की समस्या 'गाथा भोगनपूरी' उपन्यास में दिखाई देती है। दादूसिंह के यहाँ जंगलियाँ की तीन पीढ़ियाँ मजदूरी करने में जाती है। जंगलिया, उसका बाप तथा उसके दादा ने दादूसिंह के यहाँ बीस रूपये कर्जा चुकाते आ रहे थे। "दादूसिंह ने इन सभी 'जंगलियों' को छुटपन से गुलामी करते देखा था। उसकी नज़र में ये लोग इन्सान नहीं थे। गुलामी करने पैदा हुए थे और गुलामी करने के ही लायक थे।"[19] इसी तरह की समस्या मराठी के 'तंट्या' उपन्यास में दिखाई देती है। साहूकार एवं जमींदार के पास अपनी जमींन छुड़ाने के लिए तंट्या, तंट्या का बाप-भाऊसिंग तथा तंट्या का दादा इन साहूकारों के पास गुलामी करते रहे है। "पोखरला भाऊसिंगचा बाप राहायचा. सावकाराकडं त्याचा वावरं गहाण पडलं होतं. ते सोडविता-सोडविता त्याचा बापाचा आयुष्य गेलं. सावकारानं मारलेल्या फटका-यानं भाऊसिंगचा बाप पाणी-पाणी करत मेला। (पोखर में भाऊसिंग का बाप रहता था। साहूकार के पास उसकी जमीन गिरवी थी। वह छुड़ाते-छुड़ाते उसकी जिंदगी चली गयी थी। साहूकार के फटकारों से भाऊसिंग का बाप पानी-पानी कहते हुए मर गया।)"[20]

हिंदी और मराठी उपन्यासों में किसी-न-किसी रूप में पुलिस, दरोगा, गार्ड, रेंजर, पटवारी, अंग्रेज तथा अधिकारियों ने आदिवासियों पर अन्याय, अत्याचार किया है। इस संदर्भ में बी. एम. शर्मा लिखते हैं— "कल्याणकारी राज्य में पुलिस की भूमिका एक समाज सेवी संगठन की होती है। उसे कानून तथा व्यवस्था बनाएँ रखने तथा अपराधों की रोकथाम करने वाली बुनियादी भूमिका निभानी होती है।"[21]

लेकिन वर्तमान स्थिति में पुलिस व्यवहार तथा भ्रष्टाचार से आम आदमी का उन पर से विश्वास उठ गया है। विवेच्य उपन्यास 'जंगल जहाँ शुरू होता है' में पुलिस बिसराम के घर तलाशी लेने आती है। बिसराम ने कोई अपराध नहीं किया है, उसकी गलती डाकू काली का भाई होना है। पुलिस की दहशत तथा उनके व्यवहार का पता इस कथन से लगता है— "कहाँ छुपा रखा है, उस मादरचोद कलिया को ?... चोप साला। अगवार-पिछवाड़ सर्च करो। न मिले तो एक-एक घर छान मारो कहाँ जाएगा साला।"[22] इसी तरह मराठी उपन्यास 'झेलझपाट' में मन्यारवाला कासम सेठ पुलिस की सहायता से केरू को फँसाने का जाल बिछता है। उस पर लालपरी (नशे की गोली) बेचने के झूठा इल्जाम लगाता है। "स्साला कंद ले रहा था ! लालपरी बेचता था सुव्वर का बच्चा ! चल पोलीस चौकी में !"[23]

उक्त विवेचन से यह परिलक्षित होता है कि, आदिवासियों को सेठ, साहूकार, जमींदार, पुलिस, तहसिलदार, दरोगा, गार्ड, रेंजर तथा अन्य गैर-आदिवासी, आदिवासियों को फंसाते हैं इस तरह के प्रसंग हिंदी तथा मराठी उपन्यासों में कई जगहों पर आए है।

संदर्भ

[1] म. फूले वाङ्मय, पृ.सं. 416.

[2] अल्मा कबूतरी, पृ.सं. 82.

[3] पारधी, पृ.सं. 124-125.

[4] काला पादरी, पृ.सं. 26.

[5] एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 18.

[6] जहाँ बाँस फूलते हैं, पृ.सं. 30.

[7] हाकुमी, पृ.सं. 102.

[8] ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 12.

[9] एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 06.

[10] हाकुमी, पृ.सं. 84.

[11] जंगल जहाँ शुरू होता है, पृ.सं. 21.

[12] धूणी तपे तीर, पृ.सं. 25.

[13] ब्र, पृ.सं. 116.

[14] हम सबला, पृ.सं. 07.

[15] ग्लोबल गाँव के देवता, पृ.सं. 50.

[16] एका नक्षलवाद्याचा जन्म, पृ.सं. 60.

[17] जहाँ बाँस फूलते है, पृ.सं. 89-90.

[18] कोळवाडा, पृ-.सं. 147.

[19] गाथा भोगनपूरी, पृ.सं. 09.

[20] तंट्या, पृ.सं. 24.

[21] वर्ग विचारधारा एवं समाज,पृ.सं. 243.

[22] जहाँ जंगल शुरू होता है, पृ.सं. 123.

[23] झेलझपाट, पृ.सं. 64.

सहा. अधि. तोंडाकुर एल. पी

हिंदी विभाग , सरस्वती महाविद्यालय, केज , जि. बीड.